॥ ओ३म्॥

आर्य समाज के सार्वभौम नियम

१. सब सत्य विद्या और जो पदार्थ विद्या से जाने जाते हैं उन सबका आदिमूल परमेश्वर है।

२. ईश्वर सच्चिदानन्द स्वरूप, निराकार, सर्वशक्तिमान, न्यायकारी, दयालु, अजन्मा, अनन्त, निर्विकार, अनादि, अनुपम, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, अजर, अमर, अभय, नित्य, पवित्र और सृष्टिकर्ता है, उसकी ही उपासना करनी योग्य है।

३. वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है, वेद का पढ़ना-पढ़ाना और सुनना-सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है।

४. सत्य के ग्रहण करने और असत्य को छोड़ने में सर्वदा उद्यत रहना चाहिये ।

५. सब काम धर्मानुसार अर्थात् सत्य और असत्य को विचार करके करने चाहिये ।

६. संसार का उपकार करना इस समाज का मुख्य उद्देश्य है अर्थात् शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति करना ।

७. सबसे प्रीतिपूर्वक धर्मानुसार यथायोग्य बर्तना चाहिये ।

८. अविद्या का नाश और विद्या की वृद्धि करनी चाहिये ।

९. प्रत्येक को अपनी ही उन्नति से सन्तुष्ट नहीं रहना चाहिये, किन्तु सबकी उन्नति में अपनी उन्नति समझनी चाहिये ।

१०. सब मनुष्यों को सामाजिक सर्वहितकारी नियम पालने में परतंत्र रहना चाहिये और प्रत्येक हितकारी नियम में सब स्वतंत्र रहें ।

निराला मुद्रक १४०, साने गुरुजी मार्ग, बंबई-११. * फोन ३०८ ४५ ०९

॥ ओ३म् ॥

वैदिक नित्यकर्म विधि:

संध्या, प्रार्थना, स्वस्तिवाचन, शान्तिकरण, पक्षेष्टि, बृहद्यज्ञ, पुरुषसूक्त, भजन युक्त

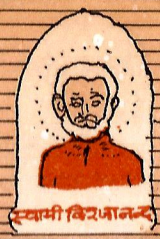

आर्य समाज मुंबई

आर्यसमाज – परिचय

चैत्र शुक्ल प्रतिपदा विक्रम संवत् १९३१ तदनुसार ७ अप्रैल १८७५ में गिरगांव बंबई में महर्षि दयानंद सरस्वती ने आर्यसमाज की स्थापना की। यह आर्यसमाज (काकडवाड़ी) बंबई विश्व का सर्वप्रथम आर्यसमाज है। जैसा कि इसके नाम से ज्ञात होता है कि आर्य श्रेष्ठ व्यक्तियों का समाज संगठन या समुदाय होना चाहिए। संसार में दो ही प्रकार के मनुष्य पाए जाते हैं एक अच्छे और दूसरे बुरे। श्रेष्ठ और अच्छे समुदाय या संगठन को 'आर्यसमाज' कहते हैं। श्रेष्ठ व्यक्तियों के समुदाय को दृढ़ रखने के लिए महर्षि दयानंद ने इसके नियम बनाए, जो 'आर्यसमाज के नियम' के रूप में जाने जाते हैं। जिनसे इस समाज के उद्देश्य और सदस्यों के कर्तव्यों का बोध होता है।

१ इस समय संपूर्ण विश्व में आठ हजार आर्यसमाज हैं।

२ इस समय आर्यसमाज की विचारधारा से प्रभावित व्यक्तियों की संख्या १० करोड़ है तथा आर्य समाज के सदस्यों की संख्या पांच लाख है।

३ संपूर्ण विश्व में २०० जिला सभाएं, ५० प्रांतीय प्रतिनिधि सभा तथा एक सर्वोच्च शिरोमणि सभा, सार्वदेशिक आर्यप्रतिनिधि सभा है।

४ आर्यसमाज की मान्यताओं के प्रचार–प्रसार के लिए ३५०० अवैतनिक उपदेशक तथा १५०० वैतनिक उपदेशक हैं। जो अहर्निश प्रचार कार्य में संलग्न है।

५ आर्यसमाज की मासिक–पाक्षिक–साप्ताहिक पत्र–पत्रिकाओं की संख्या १२० है।

६ आर्यसमाज के साहित्य को प्रकाशित करने में ५५ पुस्तक प्रकाशक निरंतर लगे हुए हैं।

७ शिक्षा के कार्य में आर्यसमाज का अद्‌भुत योगदान है। इसके १६०० प्राथमिक विद्यालय, १२०० माध्यमिक और उच्चमाध्यमिक विद्यालय, ५०० महाविद्यालय, ६ गुरुकुल, २५ कन्या गुरुकुल, १०० कन्या महाविद्यालय तथा १५० पुत्री पाठशालाएं शिक्षाकार्य में सलग्न हैं।

८ अनाथ बच्चों के पालन पोषण के लिए ५० अनाथालय कार्य कर रहे हैं।

९ विधवाओं के जीवन की बाधाओं को दूर करने के लिए ४० विधवाश्रम बने हुए हैं।

१० आर्य समाज का शिक्षा पर प्रतिवर्ष १५ अरब रुपए खर्च होता है।

११ प्रचार कार्य के लिए प्रतिवर्ष एक करोड़ पचास लाख रुपए आर्यसमाज खर्च करता है।

१२ चार विश्वविद्यालयों में आर्य समाज के सिद्धांतों पर शोध कार्य करने के लिए 'दयानंद शोधपीठ' की स्थापना हो चुकी है। जिसमें अनेक शोधकर्ता कार्य में संलग्न हैं।

१३ आर्यसमाज से संबंधित विषयों पर लगभग १५० व्यक्तियों ने शोधकार्य करके पीएच.डी. की उपाधि ली हैं।

१४ आज के नवयुवकों को जीवन का सही मार्ग निर्देश करने के लिए ५५० आर्यवीर दल की शाखाएं देश–विदेश में लगती है।

१५ मनुष्यों की चिकित्सा सेवा के लिए लगभग १०० धर्मार्थ औषधालय चल रहे हैं।

॥ ओ३म् ॥

वैदिक – नित्यकर्म – विधि

(सन्ध्या, प्रार्थना, स्वस्तिवाचन, शान्तिकरण, पक्षेष्टि, बृहद्‌यज्ञ, भजन आदि सहित)

महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती द्वारा निर्मित संस्कार विधि तथा पंचमहायज्ञ विधि से संग्रहीत

मुद्रक :
श्री. देवेश्वर शर्मा
१४०, साने गुरुजी मार्ग,
मुंबई ४०० ०११
फोन – ३०८ ४५ ०९
फोटो टाईप – सुश्री सुनीता

मूल्य :
२.५० रुपये

वि. सम्वत् २०५०
दयानन्दाब्द १६९

प्रकाशक :
मंत्री
राजेन्द्रनाथ पाण्डेय
आर्यसमाज मुंबई,
काकड़वाड़ी,
मुंबई ४०० ०१४

प्रकाशकीय

महर्षि दयानन्द सरस्वती द्वारा सर्वप्रथम स्थापित आर्यसमाज मुम्बई (काकड़वाड़ी) द्वारा वैदिक–नित्यकर्म–विधि प्रकाशित की जा रही है, जिससे कि ब्रह्मयज्ञ, देवयज्ञ आदि की विधि को समझ कर सभी लोग इन यज्ञों को करने में प्रवृत्त हो सकें।

वैदिक ऋषियों की आज्ञा के अनुसार मनुष्य को ईश्वरोपासना, देवयज्ञ, पितृयज्ञ, अतिथियज्ञ तथा बलिवैश्वदेवयज्ञ को कभी भी नहीं त्यागना चाहिये। इन के यथाविधि अनुष्ठान से सब प्रकार का व्यक्तिगत, पारिवारिक एवं सामाजिक कल्याण होता है।

इन यज्ञों का सम्पूर्ण विश्व के कल्याण एवं सुखशान्ति के निमित्त अधिकाधिक प्रचार, प्रसार हो, इस भावना से इस पुस्तिका को प्रकाशित किया जा रहा है।

इस की सहायता से यज्ञों की विधि को भली प्रकार सरलता से सीखा जा सकता है। किसी भी प्रकार के भेदभाव के बिना कोई भी बुद्धिमान् मनुष्य इन यज्ञों को करने का अधिकार रखता है, अपितु कहना चाहिये कि इन यज्ञों को करना सब का अनिवार्य कर्तव्य है।

आशा है यह पुस्तिका कल्याणकारी यज्ञों के प्रचार में सहायक होगी।

राजेन्द्रनाथ पाण्डेय
मन्त्री:- आर्यसमाज बम्बई
(काकड़वाड़ी, वी.पी. रोड)
मुंबई ४०० ००४.

अथ सन्ध्योपासन विधि :

अथ सन्ध्योपासना = ब्रह्मयज्ञ की विधि लिखी जाती है । 'सन्ध्या' शब्द का अर्थ यह है कि जिसमें भली-भांति परमेश्वर का ध्यान करते हैं, वा ध्यान किया जाये, वह 'सन्ध्या' कहाती है । सो रात और दिन के संयोग दोनों सन्ध्याओं में सब मनुष्यों को परमेश्वर की स्तुति, प्रार्थना और उपासना करनी चाहिये ।

पहले बाह्य जलादि से शरीर की शुद्धि, और राग-द्वेष आदि के त्याग से भीतर की शुद्धि करनी चाहिये । क्योंकि मनु जी ने (अ. ५ के १०९ श्लोक में) लिखा है कि शरीर जल से, मन सत्य से, जीवात्मा विद्या और तप से, और बुद्धि ज्ञान से शुद्ध होती है । परन्तु शरीर-शुद्धि की अपेक्षा अन्तःकरण की शुद्धि सब को अवश्य करनी चाहिये । क्योंकि वही सर्वोत्तम और परमेश्वर-प्राप्ति का एक साधन है ।

पहले कुशा वा हाथ से मार्जन करें, अर्थात् परमेश्वर का ध्यान आदि करने के समय किसी प्रकार का आलस्य न आवे, इसलिये शिर और नेत्र आदि पर जल प्रक्षेप करें । यदि आलस्य न हो तो न करना । फिर कम से कम तीन प्राणायाम करें अर्थात् भीतर के वायु को बल से बाहर ही रोक दें । फिर शनैःशनैः ग्रहण करके कुछ देर भीतर ही रोकके बाहर निकाल दें, और वहाँ भी कुछ देर रोकें । इस प्रकार कम से कम तीन बार करें इससे आत्मा और मन की स्थिति सम्पादन करें । इसके अनन्तर आगे लिखे 'गायत्री-मन्त्र' से शिखा को बांधकर रक्षा करें ।

अथ गायत्री - मन्त्रः

ओ३म् भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यम् भर्गो देवस्य धीमहि।
धियो यो नः प्रचोदयात्॥ यजुः अ.३६ ॥ मं :३ ॥

शिखा-बन्धन का प्रयोजन यह है कि केश इधर-उधर न गिरें। सो यदि केशादि-पतन न हों, तो न करें और रक्षा करने का प्रयोजन यह है कि परमेश्वर प्रार्थित हो कर सब भले कामों में सदा सब जगह में हमारी रक्षा करें।

अथ आचमन - मन्त्रः

निम्न मन्त्र को एक बार बोलकर जल से तीन आचमन करें-

ओं शन्नो देवीरभिष्टयऽआपो भवन्तु पीतये।
शंयोरभि स्रवन्तु नः॥ यजु.अ.३६ । मं.१२ ॥

अथ इन्द्रियस्पर्श - मन्त्राः

निम्नलिखित मन्त्रों से बाईं हथेली में जल लेकर दाहिने हाथ की मध्यमा तथा अनामिका अंगुलियों से जल द्वारा इन्द्रिय स्पर्श करें-

ओं वाक् वाक् - इससे मुख।
ओं प्राणः प्राणः - इससे नासिका (दाहिनी व बाईं)
ओं चक्षुः चक्षुः - इससे दोनों नेत्र (दाहिना व बायां)
ओं श्रोत्रं श्रोत्रम् - इससे दोनों कान (दाहिना व बायां)
ओं नाभिः - इससे नाभि।
ओं हृदयम् - इससे हृदय।
ओं कण्ठः - इससे कण्ठ।
ओं शिरः - इससे शिर।
ओं बाहुभ्यां यशोबलम् - इससे दोनों भुजाएं (दाहिनी व बाईं)
ओं करतलकरपृष्ठे - इससे दोनों हथेली, तथा उनके ऊपरी भाग।

अथ मार्जन - मन्त्राः

इसी प्रकार निम्न मन्त्रों से अंगों पर जल के छींटे देवें -

ओं भूः पुनातु शिरसि - इससे शिर।
ओं भुवः पुनातु नेत्रयोः - इससे दोनों नेत्र (दाहिना व बायां)
ओं स्वः पुनातु कण्ठे - इससे कण्ठ।
ओं महः पुनातु हृदये - इससे हृदय।
ओं जनः पुनातु नाभ्याम् - इससे नाभि।
ओं तपः पुनातु पादयोः - इससे दोनों पैर (दाहिना व बायां)
ओं सत्यं पुनातु पुनश्शिरसि - इससे पुनः शिर।
ओं खं ब्रह्म पुनातु सर्वत्र - इससे सब शरीर पर।

अथ प्राणायाम - मन्त्राः

निम्न मन्त्रों से कम से कम तीन प्राणायाम करें-

ओं भूः। ओं भुवः। ओं स्वः। ओं महः। ओं जनः।
ओं तपः। ओं सत्यम्॥

अथ अघमर्षण - मन्त्राः

ओम् ऋतं च सत्यं चाभीद्धात्तपसोऽध्यजायत।
ततो रात्र्यजायत ततः समुद्रो अर्णवः ॥१॥
समुद्रादर्णवादधि संवत्सरो अजायत।
अहोरात्राणि विदधद्विश्वस्य मिषतो वशी ॥२॥
सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथापूर्वमकल्पयत्।
दिवं च पृथिवीं चाऽन्तरिक्षमथो स्वः ॥३॥

ऋ.मं.१० । सू.१९० । मं.१ २ ३॥

अथ आचमन - मन्त्रः

निम्न मन्त्र को एक बार बोल कर तीन आचमन करें -

ओं शन्नो देवीरभिष्टयऽआपो भवन्तु पीतये।
शंयोरभि स्रवन्तु नः ॥ यजुः अ. ३६ । मं. १२ ॥

तदनन्तर गायत्र्यादि मंत्रों के अर्थ विचारपूर्वक परमेश्वर की स्तुति अर्थात् परमेश्वर के गुण और उपकार का ध्यान कर प्रार्थना करें।

अथ मनसापरिक्रमा - मन्त्राः

निम्न मन्त्रों से ईश्वर की व्यापकता का विचार करें।

ओं प्राची दिगग्निरधिपतिरसितो रक्षितादित्या इषवः। तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः ॥१॥

ओं दक्षिणा दिगिन्द्रोऽधिपतिस्तिरश्चिराजी रक्षिता पितर इषवः।तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु।योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः२।

ओं प्रतीची दिग्वरुणोऽधिपतिःपृदाकूरक्षितान्नमिषवः। तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्योनमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु। योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः ॥३ ॥

ओंउदीचीदिक्सोमोऽधिपतिःस्वजोरक्षिताशनिरिषवः। तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु। योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः ॥ ४ ॥

ओं ध्रुवा दिग् विष्णुरधिपतिः कल्माषग्रीवो रक्षिता वीरुध इषवः। तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु।योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वोजम्भे दध्मः ॥५ ॥

ओं ऊर्ध्वा दिग् बृहस्पतिरधिपतिः श्वित्रो रक्षिता वर्षमिषवः। तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु । योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः ॥ ६ ॥

अर्थव.का.३ । ।सू.२७ ।मं१-६ ॥

अथ उपस्थान - मन्त्राः

निम्न मन्त्रों से ईश्वर के तेजः स्वरूप का ध्यान करें -

ओम् उद्वयं तमसस्परि स्वः पश्यन्तऽउत्तरम्।
देवं देवत्रा सूर्यमगन्म ज्योतिरुत्तमम् ॥१ ॥

यजु .अ.३५ । मं.१४ ॥

ओं उदु त्यं जातवेदसं देवं वहन्ति केतवः।
दृशे विश्वाय सूर्यम् ॥ २ ॥ यजु .अ.३३ ।मं .३१ ॥

ओं चित्रं देवानामुदगादनीकं चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः । आप्राद्यावापृथिवीऽ अन्तरिक्षँ सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च स्वाहा ।३ ॥ यजु . अ७ । मं४२ ॥

ओं तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत्। पश्येम शरदःशतं जीवेमशरदःशतँ श्रृणुयाम शरदःशतंप्रब्रवामशरदःशतमदीनाः स्याम शरदःशतं भूयश्च शरदःशतात् ॥४ ॥ यजु .अ.३६ ।मं.२४ ॥

अथ गुरु - मन्त्रः

निम्न मन्त्र का यथा सम्भव जप करें-

ओ३म् भूर्भुवः स्वः। तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि। धियो यो नः प्रचोदयात् ॥ यजु.अ.३६।मं.३ ॥

अथ समर्पणम्

हे ईश्वर दयानिधे ! भवत्कृपयाऽनेन जपोपासनादिकर्मणा धर्मार्थकाममोक्षाणां सद्यः सिद्धिर्भवेन्नः ।

अथ नमस्कार - मन्त्रः

ओं नमः शम्भवाय च मयोभवाय च नमः शङ्कराय च मयस्कराय च नमः शिवाय च शिवतराय च ॥

यजुः अ.१६ । मं.४१ ॥

इति सन्ध्योपासनविधिः समाप्तः ॥

अथेश्वरस्तुतिप्रार्थनोपासना - मन्त्राः

ओं विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परा सुव।
यद् भद्रंतन्नऽआ सुव ॥१॥ यजुः अ.३०। मं.३॥

हे सकल जगत् के उत्पत्तिकर्त्ता, समग्र ऐश्वर्ययुक्त, शुद्धस्वरूप, सब सुखों के दाता परमेश्वर! आप कृपा करके हमारे सम्पूर्ण दुर्गुण, दुर्व्यसन और दुःखों को दूर कर दीजिये। और जो कल्याणकारक गुण कर्म स्वभाव और पदार्थ हैं, वह सब हमको प्राप्त कराइये ॥१॥

ओं हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेकऽआसीत्।
स दाधार पृथ्वीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥२॥

यजुः अ.१३ । मं.४॥

जो स्वप्रकाशस्वरूप है, और जिसने प्रकाश करने वाले सूर्य—चन्द्रमादि पदार्थ उत्पन्न करके धारण किये हैं, जो उत्पन्न हुए सम्पूर्ण जगत् का प्रसिद्ध स्वामी एक ही चेतन स्वरूप था, जो सब जगत् के उत्पन्न होने से पूर्व वर्तमान था, वह इस भूमि और सूर्यादि को धारण कर रहा है। हम लोग उस सुखस्वरूप शुद्ध परमात्मा के लिए ग्रहण करने योग्य योगाभ्यास और अतिप्रेम से भक्ति किया करें ॥२॥

ओं य आत्मदा बलदा यस्य विश्व उपासते प्रशिषं यस्य देवाः।
यस्यछायाऽमृतं यस्य मृत्युः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥३॥

यजुः अ. २५ । मं. १३॥

जो आत्मज्ञान का दाता, शरीर आत्मा और समाज के बल का देने वाला है, जिसकी सब विद्वान् उपासना करते हैं, और जिसके प्रत्यक्षसत्यस्वरूप शासन और न्याय अर्थात् शिक्षा को मानते हैं, जिसका आश्रय ही मोक्ष सुखदायक है, जिसका न मानना अर्थात् भक्ति न करना ही मृत्यु आदि दुःख

का हेतु है, हम लोग उस सुखदायक सकल ज्ञान के देने वाले परमात्मा की प्राप्ति के लिए आत्मा और अन्तःकरण से विशेष भक्ति करें अर्थात् उसी की आज्ञा का पालन करने में तत्पर रहें ॥३॥

ओं यः प्राणतो निमिषतो महित्वैक इद्राजा जगतो बभूव ।
य ईशेऽअस्य द्विपदश्चतुष्पदः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥४॥

यजुः अ. २५ । मं.११॥

जो प्राणवाले और अप्राणिरूप जगत् का अपनी अनन्त महिमा से एक ही विराजमान राजा है, जो इस मनुष्यादि और गौ आदि प्राणियों के शरीर की रचना करता है, हम लोग उस सुखस्वरूप सकलैश्वर्य के देने हारे परमात्मा के लिए अपनी सकल उत्तम सामग्री से विशेष भक्ति किया करें ॥४॥

ओं येन द्यौरुग्रा पृथिवी च दृढा येन स्व स्तभितं येन नाकः ।
योऽअन्तरिक्षे रजसो विमानः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥५॥

यजु. अ. ३२ । मं. ६ ॥

जिस परमात्मा ने तीक्ष्ण स्वभाववाले सूर्य आदि भूमि को धारण, जिस जगदीश्वर ने सुख को धारण और जिस ईश्वर ने दुःखरहित मोक्ष को धारण किया है, जो आकाश में सब लोक—लोकान्तरों को विशेष मानयुक्त अर्थात् जैसे आकाश में पक्षी उड़ते हैं, वैसे सब लोकों का निर्माण करता और भ्रमण कराता है, हम लोग उस सुखदायक कामना करने के योग्य परब्रह्म की प्राप्ति के लिए सब सामर्थ्य से विशेष भक्ति किया करें ॥५॥

ओं प्रजापते न त्वदेतान्यन्यो विश्वा जातानि परिता बभूव ।
यत्कामास्ते जुहुमस्तन्नोऽअस्तु वयं स्याम पतयो रयीणाम् ॥६॥

ऋ. म. १० । सू. १२१ ॥ मं. १०॥

हे सब प्रजा के स्वामी परमात्मन्! आप से भिन्न दूसरा कोई उन इन सब उत्पन्न हुए जड़—चेतनादिकों का तिरस्कार नहीं करता अर्थात् आप सर्वोपरि हैं । जिस जिस पदार्थ की कामनावाले हम लोग आपका आश्रय लें, और

वाञ्छा करें, वह—वह सब हमारी कामनायें सिद्ध हों। जिससे हम धनैश्वर्यों के स्वामी बनें ॥६॥

ओं सनो बन्धुर्जनिता स विधाता धामानि वेद भुवनानि विश्वा ।
यत्र देवाऽअमृतमानशानास्तृतीये धामन्नध्यैरयन्त ॥७॥

यजु. अ. ३२ । मं. १० ॥

हे मनुष्यो! वह परमात्मा हमारे भ्राता के समान सहायक, सकल जगत् का उत्पादक, सब कामों का पूर्ण करनेवाला, सम्पूर्ण लोकमात्र और नाम स्थान जन्मों को जानता है । जिस सांसारिक सुखदुःख से रहित, नित्यानन्दयुक्त, मोक्षस्वरूप धारण करनेवाले परमात्मा में मोक्ष को प्राप्त होकर विद्वान् लोग स्वेच्छापूर्वक विचरते हैं, वही परमात्मा अपना गुरु, आचार्य, राजा और न्यायाधीश है । हम लोग मिलकर सदा उसकी भक्ति किया करें ॥ ७ ॥

ओम् अग्ने नय सुपथा राये अस्मान् विश्वानि देव वयुनानि विद्वान् ॥
युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठान्ते नम उक्तिं विधेम ॥ ८ ॥

यजुः अ. ४० । मं. १६ ॥

हे स्वप्रकाश ज्ञानस्वरूप सब जगत् के प्रकाश करनेहारे सकल सुखदाता परमेश्वर ! आप जिससे सम्पूर्ण विद्यायुक्त हैं कृपा करके हम लोगों को विज्ञान वा राज्यादि ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिए, अच्छे धर्मयुक्त आप्त लोगों के मार्ग से सम्पूर्ण प्रज्ञान और उत्तम कर्म प्राप्त कराइये, और हमसे कुटिलता युक्त पाप रूप कर्म को दूर कीजिये । इस कारण हम लोग आपकी बहुत प्रकार की स्तुतिरूप नम्रता पूर्वक प्रशंसा सदा किया करें, और सर्वदा आनन्द में रहें ॥ ८ ॥

॥ अथेश्वरस्तुति प्रार्थनोपासना - मंत्राः सम्पूर्णा ॥

अथ स्वस्तिवाचनम्

ओं अग्निमीळे पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम् ।होतारं रत्नधातमम्१॥
स नः पितेव सूनवेऽग्ने सूपायनो भव । सचस्वा नः स्वस्तये ॥२ ॥

ऋ. म.१ । सू.१ । मं.१,९ ॥

स्वस्ति नो मिमीतामश्विना भगः स्वस्ति देव्यदितिरनर्वणः ।
स्वस्ति पूषा असुरो दधातु नः स्वस्ति द्यावापृथिवी सुचेतुना ॥३ ॥

स्वस्तये वायुमुप ब्रवामहै सोमं स्वस्ति भुवनस्य यस्पतिः ।
बृहस्पतिं सर्वगणं स्वस्तये स्वस्तय आदित्यासो भवन्तु नः ॥४ ॥

विश्वे देवा नो अद्या स्वस्तये वैश्वानरो वसुरग्निः स्वस्तये ।
देवा अवन्त्वृभवः स्वस्तये स्वस्ति नो रुद्रः पात्वंहसः ॥ ५ ॥

स्वस्ति मित्रावरुणा स्वस्ति पथ्ये रेवति ।
स्वस्ति न इन्द्रश्चाग्निश्च स्वस्ति नो अदिते कृधि ॥ ६ ॥

स्वस्ति पन्थामनु चरेम सूर्याचंद्रमसाविव ।
पुनर्ददताघ्नता जानता सं गमेमहि ॥७ ॥

ऋ.मं.५ । सू.५१ । म.११-१५ ॥

ये देवानां यज्ञिया यज्ञियानां मनोर्यजत्रा अमृता ऋतज्ञाः ।
ते नो रासन्तामुरुगायमद्य यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥८ ॥

ऋ.मं.७ । सू.३५ । मं.१५ ॥

येभ्यो माता मधुमत् पिन्वते पयः पीयूषं द्यौरदितिरद्रिबर्हाः ।
उक्थशुष्मान्वृषभरांत्स्वप्नसस्ताँ आदित्याँअनु मदा स्वस्तये ॥ ९ ॥

नृचक्षसो अनिमिषन्तो अर्हणा बृहद् देवासो अमृतत्वमानशुः ।
ज्योतीरथा अहिमाया अनागसो दिवो वर्ष्माणं वसतेस्वस्तये ॥१०॥

सम्राजो ये सुवृधो यज्ञमाययुरपरिह्वृता दधिरे दिवि क्षयम् ।
ताँ आविवास नमसा सुवृक्तिभिर्महो आदित्याँ अदितिं स्वस्तये११।

को वः स्तोमं राधति यं जुजोषथ विश्वे देवासो मनुषो यतिष्ठन ।
को वोऽध्वरं तुविजाता अरं करद्यो नः पर्षदत्यंहः स्वस्तये ॥१२ ॥

येभ्यो होत्रां प्रथमामायेजे मनुःसमिद्धाग्निर्मनसा सप्त होतृभिः ।
त आदित्या अभयं शर्म यच्छत सुगा नःकर्त सुपथा स्वस्तये ॥१३॥

य ईशिरे भुवनस्य प्रचेतसो विश्वस्य स्थातुर्जगतश्च मन्तवः ।
ते नः कृतादकृतादेनसस्पर्युद्या देवासः पिपृता स्वस्तये ॥१४ ॥

भरेष्विन्द्रं सुहवं हवामहेंऽहोमुचं सुकृतं दैव्यं जनम् ।
अग्निं मित्रं वरुणं सातये भगं द्यावापृथिवी मरुतः स्वस्तये ॥१५॥

सुत्रामाणं पृथिवीं द्यामनेहसं सुशर्माणमदितिं सुप्रणीतिम् ।
दैवीं नावं स्वरित्रामनागसमस्रवन्तीमा रुहेमा स्वस्तये ॥ १६ ॥

विश्वे यजत्रा अधि वोचतोतये त्रायध्वं नो दुरेवाया अभिह्रुतेः ।
सत्यया वो देवहूत्या हुवेम श्रृण्वतो देवा अवसे स्वस्तये ॥ १७ ॥

अपामीवामप विश्वामनाहुतिमपारातिं दुर्विदत्रामघायतः।
आरे देवा द्वेषो अस्मद् युयोतनोरुणः शर्म यच्छता स्वस्तये ॥१८॥

अरिष्टः स मर्त्तो विश्व एधते प्र प्रजाभिर्जायते धर्मणस्परि ।
यमादित्यासो नयथा सुनीतिभिरति विश्वानि दुरिता स्वस्तये ॥१९ ॥

यं देवासोऽवथ वाजसातौ यं शूरसाता मरुतो हिते धने ।
प्रातर्यावाणं रथमिन्द्र सानसिमरिष्यन्तमा रुहेमा स्वस्तये ॥२० ॥

स्वस्ति नः पथ्यासु धन्वसु स्वस्त्यप्सु वृजने स्वर्वति ।
स्वस्ति नः पुत्रकृथेषु योनिषु स्वस्ति राये मरुतो दधातन ॥२१ ॥

स्वस्तिरिद्धि प्रपथे श्रेष्ठा रेक्णस्वत्यभि या वाममेति ।
सा नो अमा सो अरणे नि पातु स्वावेशा भवतु देवगोपा ॥ २२ ॥

ऋ.मं.१० ।सू.६३ ।मं.३-१६ ॥

ओं इषे त्वोर्जे त्वा वायवस्थ देवो वः सविता प्रार्पयतु श्रेष्ठतमाय कर्मणऽआप्यायध्वमघ्न्या इन्द्राय भागं प्रजावतीरनमीवा अयक्ष्मा मा व स्तेन ईशत माघशꣳ सो ध्रुवा अस्मिन् गोपतौ स्यात बह्वीर्यजमानस्य पशून् पाहि ॥२३ ॥ यजु.अ.१ ।मं.१ ॥

आ नो भद्राः क्रतवो यन्तु विश्वतोऽदब्धासोऽअपरीतास उद्भिदः ।
देवानो यथा सदमिदवृधेऽअसन्नप्रायुवो रक्षितारो दिवेदिवे ॥२४ ॥

देवानांभद्रा सुमतिर्ऋजूयतां देवानाꣳरातिरभि नो निवर्त्तताम् ।
देवानाꣳसख्यमुपसेदिमा वयं देवा न आयुः प्रतिरन्तु जीवसे । २५ ।

तमीशानं जगतस्तस्थुषस्पतिं धियंजिन्वमवसे हूमहे वयम् ।
पूषा नो यथा वेदसामसद्वृधे रक्षिता पायुरदब्धः स्वस्तये ॥ २६ ॥

स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः ।
स्वस्ति नस्तार्क्ष्योऽअरिष्टनेमिः स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु ॥ २७ ॥

भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः ।
स्थिरैरंगैस्तुष्टुवाꣳसस्तनूभिर्व्यशेमहि देवहितं यदायुः ॥ २८ ॥

यजु.अ.२५ ।मं.१४,१५,१७,१९,२१ ॥

२ ३ १ २ ३ १ २ २ ३ १ २
अग्न आ याहि वीतये गृणानो हव्यदातये ।
१ २ २ २ ३ १ २
निहोता सत्सि बर्हिषि ॥२९ ॥
१ २ ३ २ ३ २ १ ३
त्वमग्ने यज्ञा नाꣳहोता विश्वेषाꣳहितः ।देवेभिर्मानुषे जने ॥३० ॥

साम.पूर्वा.प्रपा.१ ।द.१ ।मं.१,२ ॥

ये त्रिषप्ताः परियन्ति विश्वा रूपाणि बिभ्रतः ।
वाचस्पतिर्बला तेषां तन्वो अद्य दधातु मे ॥३१ ॥

अथर्व.का.१ ।सू.१ ।मं.१ ॥

॥ इति स्वस्तिवाचनम् ॥

अथ शान्तिकरणम्

शं नः इन्द्राग्नी भवतामवोभिः शं न इन्द्रावरुणा रातहव्या ।
शमिन्द्रासोमा सुविताय शं योः शं न इन्द्रापूषणा वाजसातौ ॥१॥

शं नो भगः शमु नः शंसो अस्तु शं नः पुरंध्रिः शमु सन्तु रायः ।
शं नः सत्यस्य सुयमस्य शंसः शं नो अर्यमा पुरुजातो अस्तु ।२ ॥

शं नो धाता शमु धर्ता नो अस्तु शं न उरूची भवतु स्वधाभिः ।
शं रोदसी बृहती शंनो अद्रिःशंनो देवानां सुहवानि सन्तु ॥३ ॥

शं नो अग्निर्ज्योतिरनीको अस्तु शंनो मित्रावरुणावश्विनाशम् ।
शं नः सुकृतां सुकृतानि सन्तु शं न इषिरो अभि वातु वातः ॥४॥

शं नो द्यावापृथिवी पूर्वहूतौ शमन्तरिक्षं दृशये नो अस्तु ।
शं न ओषधीर्वनिनो भवन्तु शं नो रजसस्पतिरस्तु जिष्णुः ॥५॥

शं न इन्द्रो वसुभिर्देवो अस्तु शमादित्येभिर्वरुणः सुशंसः ।
शं नो रुद्रो रुद्रेभिर्जलाषः शं नस्त्वष्टाग्नाभिरिह शृणोतु ॥६॥

शं नः सोमो भवतु ब्रह्म शं नः शं नो ग्रावाणः शमु सन्तु यज्ञाः ।
शं नः स्वरुणां मितयो भवन्तु शं नः प्रस्व१:शम्वस्तु वेदिः ॥७॥

शं नः सूर्य उरुचक्षा उदेतु शं नश्चतस्रः प्रदिशो भवन्तु ।
शं नः पर्वता ध्रुवयो भवन्तु शं नः सिन्धवः शमु सन्त्वापः ॥ ८ ॥

शं नो अदितिर्भवतु व्रतेभिः शं नो भवन्तु मरुतः स्वर्काः ।
शं नो विष्णुः शमु पूषा नो अस्तु शं नो भवित्रं शम्वस्तु वायुः ॥९॥

शं नो देवः सविता त्रायमाणः शं नो भवन्तूषसो विभातीः ।
शं नः पर्जन्यो भवतु प्रजाभ्यः शं नः क्षेत्रस्य पतिरस्तु शम्भुः ॥१०॥

शं नो देवा विश्वदेवा भवन्तु शं सरस्वती सह धीभिरस्तु ।
शमभिषाचः शमु रातिषाचः शंनो दिव्याः पार्थिवाः शंनो अप्याः ॥११॥

शं नः सत्यस्य पतयो भवन्तु शं नो अर्वन्तः शमु सन्तु गावः ।
शं न ऋभवः सुकृतः सुहस्ताः शं नो भवन्तु पितरो हवेषु ॥१२॥

शं नो अज एकपाद् देवो अस्तु शं नोऽहिर्बुध्न्य१: शं समुद्रः ।
शं नो अपां नपात् पेरुरस्तु शं नः पृश्निर्भवतु देवगोपा ॥१३॥

ऋ.म.७ । सू.३५ । मं.१-१३ ॥

इन्द्रो विश्वस्य राजति । शन्नोऽअस्तु द्विपदे शंचतुष्पदे ॥१४॥

शन्नो वातः पवता ँ शन्नस्तपतु सूर्यः ।
शन्नः कनिक्रदद्देवः पर्जन्यो ऽ अभि वर्षतु ॥१५॥

अहानि शं भवन्तु नः श ँ रात्रीः प्रति धीयताम् ।
शं न इन्द्राग्नी भवतामवोभिः शं न इन्द्रावरुणा रातहव्या ।
शं न इन्द्रापूषणा वाजसातौ शमिन्द्रासोमा सुविताय शंयोः ॥१६॥

शन्नो देवीरभिष्टय ऽआपो भवन्तु पीतये ।
शंयोरभि स्त्रवन्तु नः ॥ १७ ॥

द्यौः शान्तिरन्तरिक्ष ँ शान्तिः पृथिवी शान्तिरापः शान्तिरोषधयः
शान्तिः । वनस्पतयः शान्तिर्विश्वे देवाः शान्तिर्ब्रह्म शान्तिः सर्व ँ
शान्तिः शान्तिरेव शान्तिः सामा शान्तिरेधि ॥ १८ ॥

तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत् । पश्येम शरदः शतंजीवेम
शरदः शत ँ श्रृणुयाम शरदः शतं प्रब्रवाम शरदः शतमदीनाः स्याम
शरदः शतं भूयश्च शरदः शतात् ॥ १९ ॥

यजुः अ.३६ ।मं.८,१०-१२,१७,२४ ॥

यज्जाग्रतो दूरमुदैति दैवं तदु सुप्तस्य तथैवैति ।
दूरंगमं ज्योतिषां ज्योतिरेकं तन्मे मनःशिवसङ्कल्पमस्तु । २० ॥

येन कर्माण्यपसो मनीषिणो यज्ञेकृण्वन्ति विदथेषु धीराः ।
यदपूर्वं यक्षमन्तः प्रजानां तन्मेमनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥ २१ ॥

यत्प्रज्ञानमुत चेतो धृतिश्च यज्ज्योतिरन्तरमृतंप्रजासु ।
यस्मान्न ऋते किञ्चनकर्म क्रियते तन्मेमनः शिवसङ्कल्पमस्तु ।२२ ॥

येनेदं भूतं भुवनं भविष्यत् परिगृहीतममृतेन सर्वम् ।
येन यज्ञस्तायते सप्तहोता तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥२३ ॥

यस्मिन्नृचःसाम यजू ँ षि यस्मिन् प्रतिष्ठिता रथनाभाविवाराः ।
यस्मिँश्चित्त ँ सर्वमोतं प्रजानां तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥२४ ॥

सुषारथिरश्वानिव यन्मनुष्यान् नेनीयतेऽभीशुभिर्वाजिन इव ।
हृत्प्रतिष्ठं यदजिरंजविष्ठं तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥ २५ ॥

यजुः अ.३४ । मं.१-६ ॥

१ २ ३ २३ ३ १२ २२३ १२ २२
स नः पवस्व शं गवे शं जनाय शमर्वते ।
१ २३ १ २
शं राजन्नोषधीभ्यः ॥ २६ ॥ साम.उत्तरा.प्रपा.१ ।मं.३ ॥

अभयं नः करत्यन्तरिक्षमभयं द्यावापृथिवी उभे इमे ।
अभयं पश्चादभयं पुरस्तादुत्तरादधरादभयं नो अस्तु ॥ २७ ॥

अभयं मित्रादभयममित्रादभयं ज्ञातादभयं परोक्षात् ।
अभयं नक्तमभयं दिवा नः सर्वा आशा मम मित्रं भवन्तु ॥२८ ॥

अथर्व.का.१९ ।सू.१५ ।मं.५-६ ॥

॥ इति शान्तिकरणम् ॥

यज्ञ-प्रकरण

अथ ऋत्विग्वरणम्

यजमानोक्ति :- **ओमावसोः सदने सीद ।**
ऋत्विगुक्ति :- **ओं सीदामि ।**
यजमानोक्तिः-**ओं तत्सत्श्रीब्रह्मणोद्वितीयप्रहरार्द्धेवैवस्वत मन्वन्तरेऽष्टाविंशति तमे कलियुगेकलिप्रथम चरणेऽमुक संवत्सरे.....अयने....ऋतौ....मासे....पक्षे....तिथौ....दिवसे... नक्षत्रे....लग्ने....मुहूर्ते....अहम्..... कर्मकरणाय भवन्तं वृणे ।**
ऋत्विगुक्तिः- वृतोस्मि ।

आचमन- मन्त्राः

ओं अमृतोपस्तरणमसि स्वाहा ॥ १ ॥ इससे एक ।
ओं अमृतापिधानमसि स्वाहा ॥ २ ॥ इससे दूसरा ।
ओं सत्यं यशः श्रीर्मयि श्रीः श्रयतां स्वाहा ॥ ३ ॥इससे तीसरा

तैत्तिरीय आरण्यक प्र.१० । अनु.३२,३५ ॥

तत्पश्चात् जल लेकर नीचे लिखे मन्त्रों से अंगों का स्पर्श करें-

अंगस्पर्श-मन्त्रा :

ओं वाङ्म आस्येऽस्तु । इस मन्त्र से मुख ।
ओं नसोर्मे प्राणोऽस्तु । इस मन्त्र से दोनों नासिका ।
ओं अक्ष्णोर्मे चक्षुरस्तु । इस मन्त्र से दोनों आखें ।
ओं कर्णयोर्मे श्रोत्रमस्तु । इस मन्त्र से दोनों कान ।
ओं बाह्वोर्मे बलमस्तु । इस मन्त्र से दोनों भुजाएं ।
ओं ऊर्वोर्मे ओजोऽस्तु । इस मन्त्र से दोनों जंघाएं ।
ओं अरिष्टानि मेऽङ्गानि तनूस्तन्वा मे सह सन्तु । इस मंत्र से सारे शरीर पर जल छिड़कें । पारस्कर गृ.का.२ । कण्डिका ३ । सू.२५ ॥

तत्पश्चात् समिधाचयन वेदी में करें । पुनः-

अग्न्याधान - मन्त्र

ओं भूर्भुवः स्वः ॥ गोभिल गृ.प्र.१ ।ख.१ ।सू.११ ॥

इस मन्त्र का उच्चारण करके ब्राह्मण क्षत्रिय वा वैश्य के घर से अग्नि ला, अथवा घृत का दीपक जला, उससे कपूर में लगा, किसी एक पात्र में धर, उससे छोटी-छोटी लकड़ी लगाकर यजमान या पुरोहित उस पात्र को दोनों हाथों से उठा, यदि गर्म हो तो चिमटे से पकड़ कर अगले मन्त्र से आधान करें ।

ओं भूर्भुवः स्वर्द्यौरिव भूम्ना पृथिवीव वरिम्णा ।
तस्यास्ते पृथिवि देवयजनि पृष्ठेऽग्निमन्नादमन्नाद्यायादधे ॥

यजुः अ.३ ।मं.५ ॥

इस मन्त्र से वेदी के बीच में अग्नि को धर, उसमें छोटे-छोटे काष्ठ और थोड़ा कपूर धर अगले मन्त्र पढ़के व्यजन से अग्नि को प्रदीप्त करें ।

ओं उद्बुध्यस्वाग्ने प्रतिजागृहि त्वमिष्टापूर्ते सꣳसृजेथामयं च ।
अस्मिन्त्सधस्थेअध्युत्तरस्मिन् विश्वेदेवायजमानश्च सीदत ।

यजुः अ.१५ ।मं.५४ ॥

जब अग्नि समिधाओं में प्रविष्ट होने लगे, तब चन्दन की अथवा पलाशादि की तीन लकड़ी आठ-आठ अंगुल की घृत में डुबाकर नीचे लिखे एक - एक मन्त्र से एक - एक समिधा को अग्नि में चढ़ावें ।

समिदाधान के मन्त्र

ओं अयं त इध्म आत्मा जातवेदस्तेनेध्यस्व वर्धस्वचेद्ध वर्धय चास्मान् प्रजया पशुभिर्ब्रह्मवर्चसेनान्नाद्येन समेधय स्वाहा ॥ इदमग्नये जातवेदसे - इदं न मम ॥ १ ॥ इस से एक ।

ओं समिधाग्निं दुवस्यत घृतैर्बोधयतातिथिम्। आस्मिन् हव्या जुहोतन स्वाहा।इदमग्नये इदन्न मम ॥२ ॥ इससे, और-

ओं सुसमिद्धाय शोचिषे घृतंतीव्रंजुहोतन।अग्नये जातवेदसे स्वाहा ॥ इदमग्नये जातवेदसे इदं न मम ॥ ३ ॥ इस मन्त्र से अर्थात् इन दोनों से दूसरी ।

ओं तं त्वा समिद्भिरंगिरो घृतेन वर्द्धयामसि । बृहच्छोचा यविष्ठ्य स्वाहा ॥ इदमग्नयेऽङ्गिरसे-इदं न मम। ।४॥

यजुः अ.३ ।मं.१-३ ।.

इस मन्त्र से तीसरी समिधा की आहुति देवें ।

उपरोक्त इन मन्त्रों से समिदाधान करके नीचे लिखे मन्त्र से पांच घृत की आहुति देवें –

घृताहुति-मन्त्र

ओं अयं त इध्म आत्मा जातवेदस्तेनेध्यस्व वर्धस्व चेद्धवर्धय चास्मान् प्रजया पशुभिर्ब्रह्मवर्चसेनान्नाद्येन समधेय स्वाहा ॥ इदमग्नये जातवेदसे - इदं न मम ॥

तत्पश्चात् अंजलि में जल लेके वेदी की पूर्व दिशा आदि चारों ओर निम्न जलप्रसेचन के मन्त्रों से जल छिड़कें ।

ओम् अदितेऽनुमन्यस्व ॥१ ॥ इस मन्त्र से पूर्व में
ओम् अनुमतेऽनुमन्यस्व ॥२ ॥ इस से पश्चिम में
ओम् सरस्वत्यनुमन्यस्व ॥३ ॥ इससे उत्तर में और-

गो.गृ.प्र.१ ।खं.३ । सू.१-३ ॥

इससे दक्षिण से प्रारंभ कर चारों ओर जल छिड़कें ।

ओं देवं सवितः प्रसुव यज्ञं प्रसुव यज्ञपतिं भगाय । दिव्यो गन्धर्वः केतपूः केतन्नः पुनातु वाचस्पतिर्वाचं नः स्वदतु ॥४ ॥

यजु.अ.३० ।मं १ ॥

इसके पश्चात् यज्ञकुण्ड के उत्तर भाग में जो एक आहुति, और यज्ञकुण्ड के दक्षिण भाग में दूसरी आहुति देनी होती है उसको "आघारावाज्याहुति " कहते हैं ।और कुण्ड के मध्य में जो आहुतियाँ दी जाती हैं, उनको 'आज्यभागाहुति' कहते हैं । सो घृतपात्र में से स्रुवा को भर अंगूठा मध्यमा और अनामिका से स्रुवा पकड़के नीचे के मंत्र से आघारावाज्याहुति घृत की देवें ।

आघारावाज्याहुति-मन्त्र

ओम् अग्नये स्वाहा ॥ इदमग्नये - इदं न मम ॥ १ ॥ इस मन्त्र से वेदी के उत्तर भाग में प्रज्वलित समिधा पर आहुति देवें ।
ओम् सोमाय स्वाहा । इदं सोमाय-इदं न मम ॥२ ॥ इस मन्त्र से वेदी के दक्षिण भाग में प्रज्वलित समिधापर घृत की आहुति देवें ।
तत्पश्चात् –

गो.गृ.प्र.१ । ख८ ।सू.२४ ॥

आज्यभागाहुति - मन्त्र

ओं प्रजापतये स्वाहा ॥ इदं प्रजापतये - इदं न मम ॥३ ॥
ओं इन्द्राय स्वाहा ॥ इदमिन्द्राय - इदं न मम ॥४ ॥

इन मन्त्रों से वेदी के मध्य में दो घृत आहुति देनी चाहियें । उसके पश्चात् उसी घृतपात्र में से स्रुवा को भरके प्रज्वलित समिधाओं पर व्याहृति की चार आहुति देवें-

(संस्कारों तथा विशेष यज्ञों के मन्त्र)

व्याहृति- आहुति मन्त्र

ओं भूरग्नये स्वाहा ॥ इदमग्नये-इदं न मम ॥१ ॥
ओं भुवर्वायवे स्वाहा ॥ इदं वायवे-इदं न मम ॥२ ॥
ओं स्वरादित्याय स्वाहा ॥ इदमादित्याय - इदं न मम ॥३ ॥
ओं भूर्भुवः स्वरग्निवाय्वादित्येभ्यः स्वाहा ॥
इदमग्नि वाय्वादित्येभ्यः- इदं न मम ॥४ ॥

ये चार घी की आहुति देकर स्विष्टकृत होमाहुति एक ही दें । यह घृत अथवा भात की देनी चाहिये । इसका मन्त्र-

स्विष्टकृदाहुति- मन्त्र

ओं यदस्य कर्मणोऽत्यरीरिचं यद्वा न्यूनमिहाकरम् । अग्निष्ट त्स्विष्टकृद्विद्यात् सर्वं स्विष्टं सुहुतं करोतु मे । अग्नये स्विष्टकृते सुहुतहुते सर्वप्रायश्चित्ताहुतीनां कामानां समर्द्धयित्रे सर्वान्नः कामान्त्समर्द्धय स्वाहा ॥ इदमग्नये स्विष्टकृते- इदं न मम ॥

इससे एक आहुति देकर के प्रजापत्याहुति नीचे लिखे मन्त्र को मन में बोलकर देनी चाहिये-

ओं प्रजापतये स्वाहा ॥ इदं प्रजापतये- इदं न मम ॥

इससे मौन एक आहुति देकर, चार आज्याहुति घृत की देवें-

आज्याहुति - मन्त्र

ओं भूर्भुवः स्वः ।अग्न आयूंषि पवस आ सुवोर्ज़मिषं च नः । आरे बाधस्व दुच्छुनां स्वाहा ।इदमग्नये पवमानाय-इदन्नमम ।

ओं भूर्भवःस्वः । अग्निऋषिः पवमानः पांचजन्यः पुरोहितः । तमीमहे महागयं स्वाहा ।इदमग्नयेपवमानाय-इदन्नमम ॥ २ ॥

ओं भूर्भुवः स्वः । अग्ने पवस्व स्वपा अस्मे वर्चः सुवीर्यम् । दधद्रयिंमयिपोषं स्वाहा ।इदमग्नयेपवमानाय-इदन्नमम ॥३ ॥

ऋ.म.सू.६६ ।मं.१९-२१ ॥

ओं भूर्भुवः स्वः । प्रजापते न त्वदेतान्यन्यो विश्वा जातानि परिता बभूव । यत्कामास्ते जुहुमस्तन्नो अस्तु वयं स्याम पतयो रयीणां स्वाहा । इदं प्रजापतये इदन्नमम ॥४ ॥

ऋ.म.१० ।सू.१२१ ।मं.१० ॥

ऊपरोक्त मंत्रों से घृत की चार आहुति दे करके, अष्टाज्याहुति निम्नलिखित मन्त्रों से सर्वत्र मङ्गलकार्यों में (आठ) आहुति देवें । वे आठ आहुति मन्त्र आगे हैं-

ओं त्वंनो अग्ने वरुणस्य विद्वान् देवस्य हेळोऽवं यासिसीष्ठाः । यजिष्ठो वह्नितमः शोशुचानो विश्वा द्वेषांसि प्र मुमुग्ध्यस्मत् स्वाहा ॥ इदमग्निवरुणाभ्याम्-इदन्नमम ॥ १ ॥

ओं सत्वं नो अग्नेऽवमो भवोती नेदिष्ठो अस्या उषसो व्युष्टौ । अवयक्ष्व नो वरुणं ररांणो वीहि मृळीकं सुहवो न एधि स्वाहा । इदमग्निवरुणाभ्याम्-इदन्नमम ॥ २ ॥ ऋ.म.४ ।सू.१ ।मं.४-५ ।

ओं इमं मे वरुण श्रुधी हवमद्या च मृळय । त्वामवस्युरा चके स्वाहा ॥ इदं वरुणाय-इदन्नमम ॥ ३ ॥ ऋ.मं.१ ।सू.२५ ।मं.१९ ॥

ओंतत्वा यामि ब्रह्मणा वन्दमानस्तदा शास्ते यजमानोहविर्भिः । अहेळमानो वरुणेह बोध्युरुशंस मा न आयुःप्र मोषीः स्वाहा ॥ इदं वरुणाय- इदन्नमम ॥४ ॥ ऋ.मं. १ ।सू. २४ ।मं.११ ॥

ओं येते शतं वरुण ये सहस्रं यज्ञिया: पाशा वितता महान्तः । तेभिर्नोअद्य सवितोतविष्णुर्विश्वेमुंचन्तुमरुतःस्वर्काः स्वाहा ॥ इदं वरुणाय सवित्रे विष्णवे विश्वेभ्यो देवेभ्यो मरुद्भ्यः स्वर्केभ्यः इदन्नमम ॥५ ॥

ओं अयाश्चाग्नेऽस्यनभिशस्तिपाश्च सत्यमित्त्वमयासि । अया नो यज्ञं वहास्यया नो धेहि भेषज ँ स्वाहा ॥ इदमग्नये अयसे इदन्नमम ॥ ६ ॥ कात्या.२५ ।१ ।११ ॥

ओं उदुत्तमं वरुण पाशमस्मदवाधमं वि मध्यमं श्रथाय । अथा वयमादित्य व्रते तवानागसो अदितये स्याम स्वाहा ॥ इदं वरुणाऽऽदित्याऽदितये च-इदंनमम ॥ ७ ॥

ऋ.मं.१ ।सू.२४ । मं.१५ ॥

ओं भवतं नः समनसौ सचेतसावरेपसौ । मा यज्ञंहिँ सिष्टं मा यज्ञपतिं जातवेदसौ शिवौ भवतमद्य नः स्वाहा ॥ इदंजातवेदोभ्याम्-इदंनमम ॥८ ॥ यजुः अ.५ । मं. ३ ॥

दैनिक - अग्निहोत्र के मन्त्र

प्रातःकाल की आहुति के मन्त्र

ओं सूर्य्यो ज्योतिर्ज्योतिः सूर्य्यः स्वाहा ॥१ ॥ इससे एक
ओं सूर्य्यो वर्च्चो ज्योतिर्वर्चः स्वाहा ॥२ ॥ इससे दूसरी
ओं ज्योतिः सूर्य्यः सूर्य्यो ज्योतिः स्वाहा ॥३ ॥ इससे तीसरी
ओं सजूर्देवेन सवित्रा सजूरुषसेन्द्रवत्या । जुषाणःऽसूर्यो वेतु स्वाहा ॥ ४ ॥ इससे चौथी यजुः अ.३ । मं.१० ॥

सायंकाल की आहुति के मन्त्र

अब नीचे लिखे हुए मंत्र सांयकाल में अग्निहोत्र के जानो-
ओम् अग्निर्ज्योतिर्ज्योतिरग्निः स्वाहा ॥१ ॥ इससे एक
ओम् अग्निर्वर्चो ज्योतिर्वर्चः स्वाहा ॥२ ॥ इससे दूसरी

अब आगे के तीसरे मन्त्र को मन में उच्चारण करके तीसरी आहुति देनी चाहिये ।

ओम् अग्निर्ज्योतिर्ज्योतिरग्निः स्वाहा ॥३ ॥
ओं सजूर्देवेन सवित्रा सजू रात्र्येन्द्रवत्या । जुषाणो अग्निर्वेतु स्वाहा ॥४ ॥ इससे चौथी यजु : अ.३ ।मं.९,१० ॥

दोनों काल के मन्त्र

अब निम्नलिखित मन्त्रों से प्रातः सायं की आहुति आठ मन्त्रों में से एक - एक बोल के एक-एक आहुति देवें । ऐसे आठ आहुति देवें ।

ओं भूरग्नये प्राणाय स्वाहा ॥ इदंअग्नये, इदं न मम ॥१ ॥
ओंभुवर्वायवेऽपानायस्वाहा ।इदंवायवेऽपानाय, इदंनमम ।२ ।
ओं स्वरादित्याय व्यानाय स्वाहा ॥इदमादित्याय व्यानाय, इदं न मम ॥३ ॥ ओं भूर्भुवः स्वरग्निवाय्वादित्येभ्यः प्राणापानव्यानेभ्यः स्वाहा ॥ इदमग्निवाय्वादित्येभ्यः प्राणापानव्यानेभ्यः- इदं न मम ॥४ ॥ ओं आपो ज्योति रसोऽमृतं ब्रह्म भूर्भुवः स्वरों स्वाहा ।५ ॥ओं यां मेधां देवगणाः पितरश्चोपासते । तया मामद्य मेधयाग्ने मेधाविनं कुरु स्वाहा ॥६ ॥ यजुः अ.३२ । मं.१४ ॥

ओं विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परा सुव । यद् भद्रन्तन्न आ सुव स्वाहा ॥७ ॥ यजुः अ.३० ।मं.३ ॥

ओम् अग्ने नय सुपथाराये अस्मान् विश्वानि देव वयुनानि विद्वान् । युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठान्ते नमऽउक्तिं विधेम स्वाहा ॥८ ॥ यजुःअ.४० ।मं.१६ ॥

आगे के मन्त्र से तीन पूर्णाहुति, अर्थात् एक-एक बार मंत्र पढ़के एक-एक करके तीन आहुति देवें ॥

ओं सर्वं वै पूर्ण ँ स्वाहा ॥

॥ इत्यग्निहोत्रविधिःसंक्षेपतः समाप्तः ॥

अथ पक्षेष्टि

अमावस्या के दिन सामान्य यज्ञ के पश्चात् पूर्णाहुति (**सर्वं वै पूर्ण ँ स्वाहा**) से पूर्व निम्नलिखित मन्त्रों से स्थालीपाक (भात, खिचड़ी, लड्डु, मोहनभोग) की विशेष आहुतियां देवें -

ओम् अग्नये स्वाहा ॥ इदमग्नये - इदं न मम ॥
ओम् इन्द्राग्नीभ्यां स्वाहा ॥ इदमिन्द्राग्नीभ्यां - इदं न मम ॥
ओं विष्णवे स्वाहा ॥ इदं विष्णवे - इदं न मम ॥

व्याहृति - आहुतियां (केवल घृत से)

ओं भूरग्नये स्वाहा ॥ इदमग्नये - इदं न मम ॥ १ ॥
ओं भुवर्वायवे स्वाहा ॥ इदं वायवे - इदं न मम ॥
ओं स्वरादित्याय स्वाहा इदमादित्याय - इदन्न मम ॥
ओं भूर्भुवः स्वरग्निवाय्वादित्येभ्यः स्वाहा ॥
इदमग्निवाय्वादित्येभ्यः - इदन्न मम ॥

ऊपर्युक्त मन्त्रों से आहुतियां देने के पश्चात् '**ओं सर्वं वै पूर्ण ँ स्वाहा**' से पूर्णाहुति देवें ।

पौर्णमासेष्टि (पौर्णमास - यज्ञ)

पूर्णिमा के दिन सामान्य यज्ञ के पश्चात् पूर्णाहुति '**ओं सर्वं वै पूर्ण ँ स्वाहा**' से पूर्व निम्नलिखित मन्त्रों से स्थालीपाक (भात, खिचड़ी, लड्डु, मोहनभोग) की विशेष आहुतियां देवें -

ओम् अग्नये स्वाहा ॥ इदमग्नये - इदंनमम ॥
ओम्अग्नीषोमाभ्यांस्वाहा ॥इदमग्निषोमाभ्याम्-इदंनमम ॥
ओंविष्णवेस्वाहा ॥ इदंविष्णवे -इदंनमम ॥

व्याहृति - आहुतियां (केवल घृत से)

ओं भूरग्नये स्वाहा ॥ इदमग्नये इदन्न मम ॥
ओं भुवर्वायवे स्वाहा ॥ इदंवायवे - इदन्न मम ॥
ओं स्वरादित्याय स्वाहा ॥ इदमादित्याय - इदन्न मम ॥
ओं भूर्भुवःस्वरग्निवाय्वादित्येभ्यः स्वाहा ॥
इदमग्निवाय्वादित्येभ्यः -इदन्नमम ॥

इस विधि के पश्चात् '**ओं सर्वं वै पूर्णं स्वाहा**' से पूर्णाहुति देवें ॥

अथ पितृ - यज्ञः

पितरों के अन्तर्गत माता-पिता आदि वयोवृद्ध संबन्धियों के अतिरिक्त उन विशिष्ट विद्वानों का भी समावेश होता है, जिन के एक स्थान पर निवास[१] करने से गृहस्थ को धर्म अर्थ काम मोक्ष की शिक्षा मिलती रहती है । ऐसे मनुष्यों की श्रद्धापूर्वक सेवा करना 'श्राद्ध', तथा भोजन वस्त्र से उन्हें तृप्त करना 'तर्पण' कहलाता है। इन ही दो कार्यों से पितृयज्ञ पूर्ण होता है, कोई विशेष आहुतियां इसकी नहीं हैं ॥

१ - सर्वत्र विचरणशील विद्वान, सन्यासी, उपदेशक घर पर पधारते हैं । वे अतिथि कहलाते हैं । उनके सत्कार के लिये अतिथि यज्ञ पृथक् आगे लिखा है ।

अथ बलिवैश्वदेव -यज्ञः

पाकशाला में बने खट्टे तथा नमकीन भोजन को छोड़कर, शेष पक्वान्न से चूल्हे की अग्नि में निम्न १० मन्त्रों से आहुतियां देवें-

ओं अग्नये स्वाहा ॥ १ ॥
ओं सोमाय स्वाहा ॥ २ ॥
ओं अग्निषोमाभ्यां स्वाहा ॥ ३ ॥
ओं विश्वेभ्यो देवेभ्यः स्वाहा ॥ ४ ॥
ओं धन्वन्तरये स्वाहा ॥ ५ ॥
ओं कुह्वै स्वाहा ॥ ६ ॥
ओं प्रजापतये स्वाहा ॥ ७ ॥
ओं अनुमत्यै स्वाहा ॥ ८ ॥
ओं सहद्यावापृथिवीभ्यां स्वाहा ॥ ९ ॥
ओं स्विष्टकृते स्वाहा ॥ १० ॥

अथ अतिथि - यज्ञः

जो विद्वान् उपदेशक संन्यासी आदि मानव-जाति के सेवार्थ भ्रमण करते हुए अचानक गृहस्थ के द्वार पर आ जाते हैं, वे 'अतिथि' कहलाते हैं । ऐसे महापुरुषों की सेवा-शुश्रूषा, अन्नपान आदि से सत्कार करना अतिथि-यज्ञ कहलाता है ।

भोजन आरम्भ करने से पूर्व बोलने का मन्त्र

ओम् अन्नपतेऽन्नस्य नो देह्यनमीवस्य शुष्मिणः । प्रप्रदातारं तारिषऽऊर्ज्जंनो धेहि द्विपदेचतुष्पदे ॥ यजुःअ११ ।मं८३ ॥

प्रातःजागरण-वेला में पठनीय मन्त्र

ओं प्रातरग्निं प्रातरित्वा दधाति तं चिकित्वान प्रतिगृह्या निधत्ते ।
तेनं प्रजां वर्धयमान आयूं रायस्पोषेण सचते सुवीरः ॥ १ ॥

ऋ.१ ।१२५ ।१ ॥

ओं प्रातरग्निं प्रातरिन्द्रं हवामहे प्रातर्मित्रावरुणा प्रातरश्विना ।
प्रातर्भगं पूषणं ब्रह्मणस्पतिं प्रातः सोममुत रुद्रं हुवेम ॥ २ ॥
ओंप्रातर्जितं भगमुग्रं हुवेम वयं पुत्रमदितेर्यो विधर्ता ।आध्रश्चिद् यं मन्यमानस्तुरश्चिद् राजा चिद् यं भगं भक्षीत्याह ॥ ३ ॥
ओं भग प्रणेतर्भग सत्यराधो भगेमां धियमुदवा ददन्नः ।
भग प्र णो जनय गोभिरश्वैर्भग प्र नृभिर्नृवन्तःस्याम ॥ ४ ॥
ओम् उतेदानीं भगवन्तःस्यामोत प्रपित्व उत मध्ये अह्नाम् ।
उतोदिता मघवन्त्सूर्यस्य वयं देवानां सुमतौ स्याम ॥ ५ ॥
भग एव भगवाँ अस्तु देवास्तेनं वयं भगवन्तः स्याम ।
तं त्वा भग सर्व इज्जोहवीति स नो भग पुरएता भवेह ॥ ६ ॥

ऋ.म.७ । सु.४१ । मं.१-५ ॥

रात्रि सोते समय बोलने के मन्त्र

यज्जाग्रतो दूरमुदैति दैवं तदु सुप्तस्य तथैवैति ।
दूरङ्गमं ज्योतिषां ज्योतिरेकं तन्मे मनःशिवसङ्कल्पमस्तु ॥१ ॥
येन कर्माण्यपसो मनीषिणो यज्ञे कृण्वन्ति विदथेषु धीराः ।
यदपूर्वं यक्षमन्तः प्रजानां तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥ २ ॥
यत्प्रज्ञानमुत चेतो धृतिश्च यज्ज्योतिरन्तरमृतंप्रजासु ।
यस्मान्नऋते किंचन कर्म क्रियते तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥३ ॥
येनेदं भूतं भुवनं भविष्यत् परिगृहीतममृतेन सर्वम् ।
येन यज्ञस्तायते सप्तहोता तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥४ ॥

यस्मिन्नृचःसाम यजूंषि यस्मिन् प्रतिष्ठिता रथनाभाविवाराः ।
यस्मिँश्चित्तं सर्वमोतंप्रजानांतन्मेमनःशिवसङ्कल्पमस्तु ॥५ ॥
सुषारथिरश्वानिव यन्मनुष्यान् ने नीयतेऽभीशुभिर्वाजिनेऽइव ।
हृत्प्रतिष्ठं यदजिरञ्जविष्ठं तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥६ ॥

यजुः अ.३४ । मं. १-६ ॥

संगठन -सूक्त

ओं सं समिद्युवसे वृषन्नग्ने विश्वान्यर्य आ ।
इळस्पदे समिध्यसे स नो वसून्या भर ॥१ ॥

हे प्रभो ! तुम शक्तिशाली हो बनाते सृष्टि को ।
वेद सब गाते तुम्हें हैं कीजिये धन-वृष्टि को ।

ओं सं गच्छध्वं सं वदध्वं सं वो मनांसि जानताम् ॥
देवा भागं यथा पूर्वे सं जानाना उपासते ॥२ ॥

प्रेम से मिलकर चलो, बोलो , सभी ज्ञानी बनो ॥
पूर्वजों की भांति तुम , कर्तव्य के मानी बनो ॥

ओं समानो मंत्रः समितिःसमानी समानं मनः सह चित्तमेषाम् ।
समानं मन्त्रमभि मन्त्रये वः समानेन वो हविषा जुहोमि ॥ ३ ॥

हों विचार समान सबके, चित्त मन सब एक हों ।
ज्ञान देता हूं बराबर, भोग्य पा सब नेक हों ॥

ओं समानी व आकूतिः समाना हृदयानि वः ।
समानमस्तु वो मनो यथा वः सु सहासति ॥ ४ ॥

हों सभी के दिल तथा संकल्प अविरोधी सदा ।
मन भरे हों प्रेम से, जिससे बढ़े सुख सम्पदा ॥

पुरुष - सूक्त

सहस्त्रशीर्षा पुरुषः सहस्त्राक्षः सहस्त्रपात् ।
स भूमिं ँ सर्वत स्पृत्वात्यतिष्ठद्दशाङ्गुलम् ॥ १ ॥

पुरुषऽएवेद ँ सर्वं यद्भूतं यच्च भाव्यम् ।
उतामृतत्वस्येशानो यदन्नेनाति रोहति ॥२ ॥

एतावानस्य महिमातो ज्यायांश्च पूरुषः ।
पादोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि ॥ ३ ॥

त्रिपादूर्ध्व उदैत्पुरुषः पादोऽस्येहाभवत्पुनः ।
ततो विष्वङ् व्यक्रामत्साशनानशनेऽअभि ॥ ४ ॥

ततो विराडजायत विराजोऽअधि पूरुषः ।
स जातोऽअत्यरिच्यत पश्चाद्भूमिमथो पुरः ॥ ५ ॥

तस्माद्यज्ञात्सर्वहुतः सम्भृतं पृषदाज्यम् ।
पशूँस्ताँश्चक्रे वायव्यानारण्या ग्राम्याश्च ये ॥ ६ ॥

तस्माद्यज्ञा त्सर्वहुतऽऋचः सामानि जज्ञिरे ।
छन्दाᳫसि जज्ञिरे तस्माद्यजुस्तस्मादजायत ॥ ७ ॥

तस्मादश्वाऽअजायन्त ये के चोभयादतः ।
गावोह जज्ञिरे तस्मात्तस्माज्जाताऽअजावयः ॥ ८ ॥

तं यज्ञं बर्हिषि प्रौक्षन् पुरुषं जातमग्रतः ।
तेन देवाऽअयजन्तऽसाध्या ऽ ऋषयश्च ये ॥ ९ ॥

यत्पुरुषं व्यदधुः कतिधा व्यकल्पयन् ।
मुखं किमस्यासीत्किं बाहू किमूरू पादाऽउच्येते ॥ १० ॥

ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् बाहू राजन्यः कृतः ।
ऊरू तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्या ँ शूद्रोऽअजायत ॥ ११ ॥

चन्द्रमा मनसो जातश्चक्षोः सूर्योऽअजायत ।
श्रोत्राद्वायुश्च प्राणश्च मुखादग्निरजायत ॥ १२ ॥

नाभ्याऽआसीदन्तरिक्ष ँ शीर्ष्णो द्यौः समवर्त्तत ।
पद्भ्यां भूमिर्दिशः श्रोत्रात्तथा लोकाँ२ऽअकल्पयन् ॥ १३ ॥

यत्पुरुषेण हविषा देवा यज्ञमतन्वत ।
वसन्तोऽस्यासीदाज्यं ग्रीष्मऽइध्मः शरद्धविः ॥ १४ ॥

सप्तास्यासन् परिधयस्त्रिः सप्त समिधः कृताः ।
देवा यद्यज्ञं तन्वानाऽअबध्नन् पुरुषं पशुम् ॥ १५ ॥

यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवा स्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन्
ते ह नाकं महिमानः सचन्त यत्र पूर्वे साध्याः सन्ति देवाः ॥१६॥

अद्भ्यः सम्भृतः पृथिव्यै रसाच्च विश्वकर्मणः समवर्त्तताग्रे ।
तस्य त्वष्टा विदधद्रूपमेति तन्मर्त्यस्य देवत्वमाजानमग्रे ॥१७॥

वेदाहमेतं पुरुषं महान्तमादित्यवर्णं तमसः परस्तात् ।
तमेव विदित्वाति मृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय ॥१८॥

प्रजापतिश्चरति गर्भेऽअन्तरजायमानो बहुधा वि जायते ।
तस्ययोनिंपरिपश्यन्तिधीरास्तस्मिन्हतस्थुर्भुवनानिविश्वा ।१९

यो देवेभ्यऽआतपति यो देवानां पुरोहितः ।
पूर्वो यो देवेभ्यो जातो नमो रुचाय ब्राह्मये ॥२०॥

रुचं ब्राह्मं जनयन्तो देवाऽअग्रे तदब्रुवन् ।
यस्त्वैवं ब्राह्मणो विद्यात्तस्य देवाऽअसन्वशे ॥२१॥

श्रीश्चते लक्ष्मीश्च पत्न्यावहोरात्रे पार्श्वेनक्षत्राणि रूपमश्विनौ
व्यात्तम् ।इष्णन्निषाणामुंमऽइषाणसर्वलोकंमऽइषाण ॥२२॥

॥ इति पुरुष सूक्त ॥

वैदिक - राष्ट्रीय - प्रार्थना

ओ३म् आ ब्रह्मन् ब्राह्मणो ब्रह्मवर्चसी जायतामा राष्ट्रे राजन्युः
शूरऽइषव्योऽतिव्याधी महारथो जायतां दोग्ध्री धेनुर्वोढाऽ
नड्वानाशुः सप्तिः पुरन्धिर्योषा जिष्णू रथेष्ठाः सभेयो युवास्य
यजमानस्य वीरो जायतां निकामे निकामे नः पर्जन्यो वर्षतु
फलवत्यो नऽओषधयः पच्यन्तां योगक्षेमो नः कल्पताम् ॥

यजुः अ.२२ । मं.२२ ॥

राष्ट्रीय-प्रार्थना

ब्रह्मन् ! स्वराष्ट्र में हों, द्विज ब्रह्मतेजधारी ।
क्षत्रिय महारथी हों, अरिदल विनाशकारी ॥
होवें दुधारु गौवें, पशु अश्व आशुवाही ।
आधार राष्ट्र की हों, नारी सुभग सदा ही ॥
बलवान सभ्य योद्धा यजमान पुत्र होवें ।
इच्छानुसार वर्षे, पर्जन्य ताप धोवें ।
फल - फूल से लदी हों, औषध अमोघ सारी ।
हो योग - क्षेमकारी, स्वाधीनता हमारी ॥

शान्तिपाठः

ओं द्यौः शान्तिरंतरिक्ष ँ शान्तिः पृथिवी शान्तिरापः
शान्तिरोषधयः शान्तिः । वनस्पतयः शान्तिर्विश्वे देवाः
शान्तिर्बह्म शान्तिः सर्व ँ शान्तिः शान्तिरेव शान्तिः सा मा
शान्तिरेधि ॥ ओं शान्तिः । शान्तिः ॥ शान्तिः ॥

यजुः ३६ ।१७ ॥

यज्ञ-प्रार्थना

यज्ञरूप प्रभो हमारे, भाव उज्वल कीजिये।
छोड़ देवें छल-कपट को, मानसिक बल दीजिये ॥१॥
वेद की बोलें ऋचाएं सत्य को धारण करें।
हर्ष में हों मग्न सारे, शोक-सागर से तरें ॥२॥
अश्वमेधादिक रचायें, यज्ञ पर-उपकार को।
धर्म-मर्यादा चलाकर, लाभ दें संसार को ॥३॥
नित्य श्रद्धा-भक्ति से, यज्ञादि हम करते रहें।
रोग-पीड़ित विश्व के, सन्ताप सब हरते रहें ॥४॥
भावना मिट जाये मन से, पाप अत्याचार की।
कामनायें पूर्ण होवें, यज्ञ से नर-नार की ॥५॥
लाभकारी हों हवन, हर जीवधारी के लिये।
वायु जल सर्वत्र हों शुभ गन्ध को धारण किये ॥६॥
स्वार्थ-भाव मिटे हमारा, प्रेम-पथ विस्तार हो।
इदं न मम का सार्थक, प्रत्येक में व्यवहार हो ॥७॥
हाथ जोड़ झुकाय मस्तक, वन्दना हम कर रहे।
नाथ करुणारूप करुणा आपकी सब पर रहे ॥८॥

कल्याण प्रार्थना

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःख भाग्भवेत् ॥
सब का भला करो भगवान्, सब पर कृपा करो भगवान्।
सब पर दया करो भगवान्। सब का सब विधि हो कल्याण ॥
हे ईश सब सुखी हों, कोई न हो दुःखारी।
सब हों निरोग, भगवन् धन धान्य के भण्डारी ॥
सब भद्र-भाव देखें, सन्मार्ग के पथिक हों।
दुःखिया न कोई होवे, सृष्टि में प्राणधारी ॥

मंगल गान

आज मंगल गान गायें

यज्ञ सुन्दर हो रहा है। घर सुगन्धित हो रहा है।
क्यों न इस सुकृति सुधा से स्वयं को सुरक्षित बनायें ॥
फूल सुन्दर खिल रहे हैं, हिल रहे हैं मिल रहे हैं ॥
क्यों न प्रेम विभोर हों हम, सब मिलें खुशियाँ मनायें ॥
दूर हों दुर्वासनायें। पूर्ण होवें कामनायें ॥
पूर्ण प्रभु की पूर्ण करुणा से प्रकाशानन्द पायें ॥

भजन १

मेरे दाता के दरबार में सब लोगों का खाता।
जैसी करनी करे कोई नर वैसा ही फल पाता ॥
क्या साधू क्या संत गृहस्थी क्या राजा क्या रानी।
प्रभु की पुस्तक में लिखी है सब की कर्म कहानी ॥
बढ़ता वह जो जमा खर्च का सही हिसाब लगाता ॥१॥
नहीं चले उसके घर रिश्वत, नहीं चले चालाकी।
उस के अपने लेन देन की रीत बड़ी है बांकी ॥
पुण्य का बेड़ा पार करे वह पाप की नाव डुबाता ॥२॥
बड़ा कड़ा कानून प्रभु का बड़ी कड़ी मर्यादा।
किसीको कौड़ी कम नहीं देता किसी को कौड़ी ज्यादा।
इसी लिये तो सब दुनियां का नगर सेठ कहलाता ॥३॥
करता सही हिसाब सभी का एक आसन पर डटके।
उस का फैसला कभी न बदले लाख कोई सर पटके ॥
समझदार तो चुप हो जाता मूर्ख शोर मचाता ॥४॥

अच्छे कर्म करो रे भाई कर्म न करियो काला ।
लाख आँखं से देख रहा है तुम्हें देखने वाला ॥
अच्छी करनी करो चतुर नर समय गुजरता जाता ॥५॥

भजन २

धन धन हो तेरी कारीगरी करतार ।

जब निराकार और निर्विकार साकार बना दिया जग कैसे ।
जाग्रत स्वप्न सुषुप्ति तुरिया फिर रचा मुक्ति का मग कैसे ।
क्या वस्तु लई जासे देह नई फिर बन गई रग रग कैसे ।
धार सब को रम सब में रहा फिर सब से रहा अलग कैसे ॥
जब अपाणि पादौ नमनो ग्रहिता फिर कोई पकड़े पद कैसे
जब काशी काबे में न पता फिर पावे कोई पता कैसे
वन पर्वत पृथ्वी नभ धारे, सबको रहा है कैसे धार ॥१॥
दाता रच दिये सूरज जैसे चमकीले पदार्थ चमक निराली कहीं नहीं ।
बरसे जब भरदे जल जंगल पृथ्वी में आकाश में सागर कहीं नहीं ॥
नर तन सा चोला सी दिया सुई धागा हाथ में कहीं नहीं ।
दे भोजन कीड़ी कुंजर को तेरे भरे भण्डारे कहीं नहीं ॥
वह यथा योग्य वर्ताव करे मिले रुये रियायत कहीं नहीं ।
दिन रात न्याय में न फर्क पड़े तेरी लगी कचहरी कहीं नहीं ॥
अखण्ड ज्योति अपार लीला काहू न पायौ तेरौ पार ॥
दाता जाने किस विधि गर्भ में रख करके तेने दी क्रीड़ा बालपन की ।
फिर जाने जवानी कहाँ से आयी कमी रही न यौवन की ॥
फिर बुढ़ापा देकर दिखा गयी जो बनी सो एक दिन बिगड़न की ॥
कोई पैसै-पैसै को मोहताज फिरे कोई कोठी खोले धन की ॥
कोई कामिन संग किलोल करे कोई रो- रो राख करे तन की ॥
कहीं समुन्दर जल से भरे कहीं चोटी चमके पर्वत की ॥

आर्यसमाज मुम्बई (काकड़वाड़ी)

में

यज्ञ एवं संस्कार आदि मंगल-कार्य पूर्ण विधि के साथ सम्पन्न कराने के लिये सुयोग्य पुरोहित उपलब्ध हैं। आर्यसमाज भवन में आ कर भी यज्ञ, संस्कार आदि सम्पन्न कराये जा सकते हैं। यहाँ सब व्यवस्था सुन्दर रीति से की जाती है।

आर्य समाज द्वारा हवनसामग्री का निर्माण शास्त्रोक्त विधि से पूर्ण शुद्धता के साथ किया जाता है। यज्ञ आदि में प्रयोग करने के लिये यह केवल लागत मूल्य पर उपलब्ध करायी जाती है।

जीवन-निर्माण में सहायक तथा आत्मोन्नति का सत्य-पक्ष प्रदर्शित करने वाले, महान लेखकों द्वारा लिखित उत्तम ग्रन्थ यहाँ विक्रयार्थ उपलब्ध रहते हैं।

वेद, उपनिषद्, दर्शन, आदि सद् ग्रन्थ हिन्दी, अंग्रेजी, मराठी आदि भाषाओं में व्याख्या सहित प्राप्त करने के लिये सम्पर्क करें।

आर्यसमाज मुम्बई, (काकड़वाड़ी)
वी. पी. रोड, मुम्बई-४०० ००४.
फोन : ३५ २१ ८२

॥ ओ३म्॥

आर्य समाज के सार्वभौम नियम

१. सब सत्य विद्या और जो पदार्थ विद्या से जाने जाते हैं उन सबका आदिमूल परमेश्वर है।

२. ईश्वर सच्चिदानन्द स्वरूप, निराकार, सर्वशक्तिमान, न्यायकारी, दयालु, अजन्मा, अनन्त, निर्विकार, अनादि, अनुपम, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, अजर, अमर, अभय, नित्य, पवित्र और सृष्टिकर्ता है, उसकी ही उपासना करनी योग्य है।

३. वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है, वेद का पढ़ना-पढ़ाना और सुनना-सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है।

४. सत्य के ग्रहण करने और असत्य को छोड़ने में सर्वदा उद्यत रहना चाहिये ।

५. सब काम धर्मानुसार अर्थात् सत्य और असत्य को विचार करके करने चाहिये ।

६. संसार का उपकार करना इस समाज का मुख्य उद्देश्य है अर्थात् शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति करना ।

७. सबसे प्रीतिपूर्वक धर्मानुसार यथायोग्य बर्तना चाहिये ।

८. अविद्या का नाश और विद्या की वृद्धि करनी चाहिये ।

९. प्रत्येक को अपनी ही उन्नति से सन्तुष्ट नहीं रहना चाहिये, किन्तु सबकी उन्नति में अपनी उन्नति समझनी चाहिये ।

१०. सब मनुष्यों को सामाजिक सर्वहितकारी नियम पालने में परतंत्र रहना चाहिये और प्रत्येक हितकारी नियम में सब स्वतंत्र रहें ।

निराला मुद्रक १४०, साने गुरुजी मार्ग, बंबई-११. * फोन ३०८ ४५ ०९

॥ ओ३म् ॥

वैदिक नित्यकर्म विधिः

संध्या, प्रार्थना, स्वस्तिवाचन, शान्तिकरण, पक्षेष्टि, बृहद्यज्ञ, पुरुषसूक्त, भजन युक्त

आर्य समाज मुंबई